International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 21-06-2023, Accepted: 07-07-2023, Published: 22-07-2023
Volume 9, Issue 4, 2023, Page No. 27-28

भारत में मानव अधिकार से जुड़े पक्षों का अध्ययन

पवन कुमार
UGC-NET JRF, स्नातकोत्तर (राजनीति विज्ञान), IGNOU, New Delhi, India

सारांश
मानव अधिकारों का अध्ययन मूलतः राज्य से जुड़ा है, क्योंकि अधिकारों के प्रश्न पर जो समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, उनमें राज्य से संबंधित प्रश्न अधिक व्यापक और चिंता को उत्पन्न करते हैं। मानव अधिकारों की सुरक्षा का प्रश्न राज्य को ही संबोधित किया जाता है और राज्यों से आशा की जाती है कि वह अधिकारों को सुरक्षित करने का उतरदायित्त्व ग्रहण करेगा। यों अधिकारों की अवहेलना भी राज्यों के द्वारा ही मुख्य रूप से होती है। वैसे मानव अधिकार के प्रश्न को व्यक्ति और व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों और उनकी सीमाओं के अर्थों में परिभाषित करने का प्रयास होता है, किन्तु यह प्रश्न इतना गंभीर नहीं माना जा सकता है, क्योंकि व्यक्ति द्वारा अधिकारों की अवहेलना के सामूहिक प्रभाव इतने व्यापक और गंभीर नहीं होते हैं। वर्तमान में मानव अधिकारों का विश्लेषण स्वाभाविक रूप से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों में किया जा रहा है और इस क्रम में आवश्यकता एक ऐसे दृष्टिकोण की है कि हम अन्तः अनुशासनात्मक संदर्भों में अपने आकलन को प्रस्तुत करें तो वह मानव अधिकारों की व्यापक समझ को विकसित करेगा। इसी क्रम में एक ओर प्रश्न को समझना भी सामाजिक विज्ञानों में अधिक आवश्यक है क्योंकि उसका अभाव अधिकारों के उचित आंकलन में बाधक है। मानव अधिकारों की उपलब्धि में कतिपय सामाजिक प्रक्रियाओं को ले सकते हैं।

मूल शब्द: अध्ययन, उतरदायित्त्व, अवहेलना, पारस्परिक संबंध, विश्लेषण, आंकलन, बाधक।

भारत में मानव अधिकारों की स्थितिः भारत में मानव अधिकारों की स्थिति का विश्लेषण हमारे संविधान की प्रस्तावना से होना अधिक उपयोगी रहेगा। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता और बंधुत्व को स्थापित करने की बात कही गई है। साथ ही साथ भारत को सार्वभौमिक सर्वसत्ता सम्पन्न गणतंत्र स्वीकार है। इसकी मूल अवधारणा में प्रजातंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष की सैद्धांतिक स्वीकृति है। क्योंकि हमारे सामाजिक विकास और उससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों का एक आकलन करना आवश्यक है। हमारे सामाजिक विकास का यही आकलन भारतीय स्थिति में मानव अधिकारों की हमारी प्रतिबद्धता और उसकी वास्तविक स्थितियों को स्पष्ट करेगा। हम अपने विश्लेषण में भारत, उत्तरप्रदेश और दक्षिण भारत की स्थितियों का उल्लेख कर रहे हैं। ये विश्लेषण कुछ स्थितियों में चौकाता है किंतु इसका मूल स्वर अभावों के वर्णन का है। यह विश्लेषण बढ़ते हुए सामाजिक अभावों और अंतरालों का है जहाँ वास्तविकताएँ भयावह हैं, जो सामाजिक क्षेत्र में हमारी उपेक्षाओं की स्थिति को भी स्पष्ट करता है। विकास के साथ मानव अधिकारों को जोड़ना गलत नहीं होगा, विशेषकर उन स्थितियों में जबकि आर्थिक विकास में कुछ मानक सामाजिक विकास की स्थितियों को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। विकास के भारतीय अनुभव में जहाँ अनेक प्रकार की विषमताएँ और विभिन्नताएँ हैं, वहाँ मानव अधिकार और विकास की प्रक्रियाओं के अन्तः संबंधों को रेखांकित करना गलत नहीं है। विकास एक अर्थ में मूल सुविधाओं का विस्तार है। यह जीवनयापन के अवसरों से जुड़ा है और न्यूनतम जीवन स्तर की उपलब्धियों से इसका सीधा संबंध है। विकास के साधनों के वितरण पर राजनीति और राजनीतिक पक्षों का प्रभाव हो सकता है। भारतीय अनुभवों में तो एक तथ्य बहुत ही रोचक है कि जिन प्रांतों में राजनीति और राजनीतिक शक्ति अधिक है वहाँ विकास के विशेषकर सामाजिक विकास के मानको का सही विकास नहीं हुआ है। इन प्रांतों की सामाजिक सरंचनाएँ जो पिछड़ेपन को लगातार बढ़ाने में सहयोग कर रही हैं। दक्षिण के प्रांतो में सामाजिक विकास के मानक अधिकार विकसित हैं और आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता अधिकार ही हैं। ऐसे में यह परिकल्पना है कि विकास और उसके सामाजिक मानक मानव अधिकारों की उपलब्धि के क्रम में अधिक सहायक हैं। सामाजिक मानकों के अभाव में जो सरंचनाएँ विकसित होगी वे अधिकार भयावह हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राज्य मूलतः एक उदारवादी प्रजातांत्रिक राज्य के रूप में उभरकर सामने आता हैं। जिसमें मौलिक अधिकार, संविधान, प्रभावी न्यायपालिका मुख्य आधार हैं किंतु राज्य भारतीय स्थिति में उन प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप भी कर रहा हैं जहाँ राज्य की भूमिका न केवल महत्त्वपूर्ण है वरन् प्रभावी भी है। राज्य के हस्तक्षेप और उससे जुड़ी अव्यवस्थाओं और अक्षमताओं और लगातार बढ़ते हुए सामाजिक तनावों और असंतोष से राज्य में सत्ता प्रतीकों का लगातार विस्तार हुआ है। राज्य के पास व्यक्ति को नियंत्रित करने की अभूतपूर्व क्षमताएँ हैं और उससे संबंधित नियम भी हैं। राज्य के आचरण में व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की मर्यादाओं की अवहेलना लगातार दृष्टिगोचर होती है। राज्य के सशक्त होने की इस अनुभूति के साथ हमारे यहाँ राज्य की अक्षमताओं का प्रदर्शन साफतौर पर नजर आता है। राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने का अर्थ ही यह है कि हम अपने यहाँ दुविधा की स्थिति के बने रहने में अधिक रूचिशील हैं। मानव अधिकारों से जुड़े वे अधिकार जो सामाजिक सरोकारों से जुड़े हैं उनकी उपलब्धि तो लगभग असम्भव हो जाएगी।

भारत में मानव अधिकार से जुड़े दो पक्षों का अलग–अलग आकलन होना आवश्यक है। यह टिप्पणी अनिवार्य है कि दोनों ही राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों को अलग–अलग करके देखना उचित नहीं है। इस क्रम में हम सर्वप्रथम अनुच्छेद 18 का विश्लेषण करना चाहते हैं। यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को विचार अन्तः चेतना और धर्म की स्वतंत्रता देता है इसमें उसे अपने धर्म या विश्वास में बदलाव की स्वतंत्रता भी है जिसका प्रयोग वह व्यक्तिगत या सामूहित स्तर पर कर सकता है। उदारवादी मूल्य धर्मनिरपेक्षता के विचार से नजदीक हैं। यह आस्था और उन सब समाजों के लिए अधिक उपयोगी है जो धर्म बहुल हैं। भारतीय संदर्भ इन्ही अर्थों में महत्त्वपूर्ण है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में अपने मत की अभिव्यक्ति के अधिकार भी प्राप्त हैं, इसमें हस्तक्षेप का विरोध किया गया है।

भारतीय स्थिति में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए विभिन्न माध्यमों को पर्याप्त स्वतंत्रता है किन्तु हाल में ही कुछ वर्षों में यह लगता है कि सूचना माध्यमों पर राजनीतिक हस्तक्षेप के दबाव बढ़ने लगे हैं। यह स्थिति और भी जटिल हो जाती है जब व्यक्ति अपने सूचना प्राप्ति के अधिकार को मांगने लगता है।

सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के आकलन का क्षेत्र अधिक व्यापक हैं और यह आभास भी देता है कि लम्बे प्रयासों के होते हुए भी अभी एक बड़ा वर्ग इन अधिकारों से वंचित है। इस क्रम में अनुच्छेद 23 का उल्लेख आवश्यक है जो प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का अधिकार प्रदान करता है। उसे अपनी इच्छा के रोजगार का अधिकार हैं। साथ ही साथ बेरोजगारी की स्थिति में सरंक्षण का अधिकार भी। हम यह बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि हमारे यहाँ महिला और पुरूष में श्रम की अलग–अलग कीमत हैं। हम इस तथ्य से भी परिचित हैं कि भेदभाव के साथ–साथ एक सामाजिक उपेक्षा भी महिलाओं के संदर्भ में हैं। शिक्षा का मूल अधिकार विशेषकर प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की बात मानव अधिकारों की घोषणा में से एक है किन्तु बहुत लम्बे समय तक भारतीय संदर्भ में संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में घोषणा के बाद भी प्राथमिक शिक्षा को सर्व–साधारण तक नहीं पहुँचाया जा सका। शिक्षा के अधिकार से वंचित बहुत बड़ा समुदाय हैं जिनके लिए चेतना के अभाव में अधिकारों की घोषणा निरर्थक है। महिला शिक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित किया जाए। आर्थिक अभावों तथा अंतरालों की रचना करता हैं, ऐसें में यदि हम समाज के बड़े समूह को शिक्षा की सुविधा से दूर रखेंगे तो मानव अधिकारों की स्थापना से तो वह वर्ग स्वाभाविक रूप से ही दूर हो जाएगा। भारत में मानव अधिकारों की बात महिला अधिकारों की स्थिति पर चर्चा के अभाव में एकांगी ही रहेगी। पिछले कुछ वर्षों में उनके राजनैतिक सशक्तिकरण ने और आर्थिक भागीदारी ने कुछ स्थितियों को बदला है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उनके बढ़ते हुए अधिकारों के विमर्श ने उनकी स्थितियों को बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं किया है।

निष्कर्ष

मानव अधिकारों के इस विश्लेषण में यह स्पष्ट है कि उदारवादी, प्रजातांत्रिक परिकल्पनाओं से जुड़े ये अधिकार फिलहाल तीसरी दुनिया के अधिकांशतः देशों में वास्तविकता नहीं है ये मानक हैं इन देशों के समाजों के लिए और उन सब समूहों के लिए जो राजनीति करते हैं, जीवन की भौतिक सुविधाओं के अभाव के फलस्वरूप भारतीय स्थिति में भी ये अधिकार एक मानक स्थिति हैं, जिसके लिए विभिन्न राजनीतिक समूह प्रयासरत हो सकते हैं साथ ही साथ ये हमारे समाज की बहुलता के लिए भी एक आदर्श है।

संदर्भ सूची

1. समीर नईद अहमद, '' ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबलाइजेशन' (निबंध), काउंटर करन्ट्स, ओरजी अप्रैल, 2007
2. डेलफिन राबेट, ' ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबलाइजेशन : दी मिथ ऑफ कारपरेट सोशल रिस्पोन्सबिलिटी' जर्नल ऑफ अलटेरनेटिव परस्पेक्टिव इन दी सोशल साइन्सेज, जिल्द 1, अंक 2, 2009, पृ. 463–475
3. डेरिक एम. नायूलेट एण्ड शान एल. इंग्लैण्ड, ग्लोबलाइजेशन एण्ड ह्यूमन राइट्स इन डवलपिंग वर्ल्ड, पालग्रंथ, 2011
4. त्रिपाठी प्रदीप, मानवाधिकार और भारतीय संविधान, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. सं. 27–41
5. डॉ० दीक्षित रमेश चन्द्र, मानवाधिकार दशा और दिशा, डायमंड पॉकेट बुक्ट, नई दिल्ली, 2003, पृ. सं. 50–54
6. डॉ. जोशी आर. पी. मानव अधिकार एंव कर्तव्य, ए. वी. पब्लिकेशन, अजमेर, 2003, पृ. सं. 309–312
7. राजकिशोर, मानवाधिकारो का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. सं. 62